उज्ज्वल नीलरस

केशव कालीधर

किताब महल, इलाहाबाद

समानांतर साम्राज्य रचने वाले
के लिए

केशव कालीधर की कविताएँ पिछले दस बारह वर्षों से निरंतर
़्यम', 'धर्मयुग,' 'ज्ञानोदय,' 'नई धारा', 'लहर', कादंबिनी' 'साप्ताहिक
ुस्तान,' 'अकथ,' 'उत्कर्ष' तथा अन्य अनेक लघुपत्रिकाओं में भी खूब
' हैं। उन तमाम कविताओं में से कुछ छाँट कर एक नए स्वाद के लिए
य रसिकों के लिए 'उज्ज्वल नील रस' में संग्रहीत की गई हैं।

रचना कितने स्तर पर अपने रचने वाले से साक्षात्कार करके
ाखे स्वरूप धरती है—इसका अनुमान बँधे हुए फलक में देखने की आदी
ों को प्राय: होता ही नहीं ! कभी हुआ भी तो सिर्फ़ कुतूहल की सीमा
जाकर समाप्त हो जाता है। ये कविताएँ कुतूहल से आगे जाने वालों
तलाश में निकली हैं।

कालीधर कोई उपनाम नहीं है—परिवार के पुरखों का आशीष
ानना ठीक होगा।

—केशवचन्द्र वर्मा

वसंत
१९८०
६५, टैगोर टाउन,
एलाहाबाद

अनुक्रम

लौट नहीं पाओगे

तुम···
तुम जो चुनौतियाँ उठाकर
इस अंधेवन को पार कर
उस ओर की एक श्रुत-कल्पित
अनजान नगरी को
मानचित्र पर खींच लाने को
कृत संकल्प थे—
तुम जो
अँधेरे से
लड़ने के लिए दर्पस्फीत—
तुम जो
अपने ही निकष पर
विश्वासों को खींच
निहित किरणों की
छाप देखने को आकुल—
तुम जो
अपनी भुजाओं से
उठती सलाखों को
नतशिर करने का भरे गर्व—
तुम जो
हर शुभ को
स्वयंवरने के लिए
पिनाकों की
सामर्थ्य को ललकारते—

तुम जो
पहिचाने पथ को
लकीरों के इतिहास से
दफ़न करने के लिए स्वप्न——
तुम जो
अपनी गति से
दर्पोन्नत दुर्लंध्य शिखरों को रौंद कर
क्षितिज को अपने भीतर समेट लेने की
——सहजता से आक्रांत–
इस क्षण
आकंठ
काँस के विस्तार में
भटक रहे हो !

काँस……सिर्फ़ काँस
लचीली बर्छियों की यह अयाचित फ़सल
दुधारी तलवार सी
झूमती है
कितने यादव योद्धाओं का लहू चूस
नरभक्षी अफ्रीकी वृक्षों की संतान…
बर्छियों की यह फ़सल——
अपने बीच
फिर एक गर्वोन्नत पाकर !
हर क्षण देह पर
रक्तिम छाप छोड़तो

शिराओं को चीर
गति को नियंत्रित करती
काँस की यह विस्तृत राशि
इस क्षण की
ध्रुवता का विश्वास
उगा जाना चाहती है
चट्टान की परतों पर !

पाँव के नीचे
वह काँपतो है धरती–

वह—
जिस पर पंजे गड़ाकर
बढ़ाए थे तुमने अपने वामन चरण
नापने को तीनों लोक !

पाँव के नीचे
वह काँपती है धरती !

काँस की फ़सल के नीचे
दूर तक बिछी
दलदली मुलायम धरती
लथपथ अस्तित्व को
सीता की भाँति
लील जाने को आतुर है !

परिचित पथों की प्रतिध्वनियाँ
बहुत पीछे
पांडवों सी
गल गईं ।
जूझने का शाप देकर
सीमाएँ
टल गईं !

और काँस के इस समुन्दर में
ध्वस्त पोत के पटरे से
तुम—
अपने वरण की मर्यादा को झेलते
ठिठक की इस ठवनि में भी
लिविंग्स्टन या कोलम्बस की
छायाओं को
सिर्फ़ मिटते हुए देखते हो !

लौटोगे ?
....
....
पीछे हट कर
तटस्थता के चश्मे से

सारेफलक को बाँध
अपने बग़ल में लटका कर
क्या इस यातना के सुख को
फ़ैशन की तरह
अविकल झेल नहीं सकोगे ?
रेडियोग्राम से निकले फ़िल्मी गानों से
उसका तालमेल बिठा
झूमती हुई बर्छियों की इस फ़सल को
खूबसूरत चीनीमिट्टी के गुलदस्तों में
सजा कर

जूझने का विचार विलास
स्प्रिंगकोच के रस में सिझाकर
क्या अपने ड्राइंगरूम में आए हुए
अतिथि को

तुम
दृष्टि का नया आयाम नहीं दे सकते ?
लौटोगे ?
....

तन्वंगी, चमकीली
दुधारी काँस की उपलब्धि लेकर...
जिसने कोमलता पर
रक्तिम रेखाएँ खींच
शिराओं में तपने का दर्द दिया...

लौटोगे तुम ?
उसी दर्द को
रंगीन मूँज की
शिल्पी मंजूषाओं में
बंद कर
बाज़ार में
बचने को
लौटोगे तुम...?

नहीं।
शायद नहीं।
तुम लौट ही नहीं पाओगे...
क्योंकि...

—क्योंकि काँस के इस समुंदर में
हर झोंके के साथ
तुम सरोद की वह गत सुनने
लग गए हो

जहाँ हर आंदोलन
एक नई आकृति ग्रहण करता है
और हर क्षण
एक जलते हुए तार की तरह
स्निग्ध
मौन

और स्थिर रहकर भी
अनुभूत होते ही
तराशता चला जाता है...

—क्योंकि
तुम्हारा यह संकल्प
उन दूरियों को तोड़ता है
जो उस अनजान नगरी के
बंद द्वारों को
खोलता चला जाता है
और साबुन के रंगीन
बुलबुलों की भाँति
तुम्हें अपने व्यक्तित्व के
नए अर्थ
तैरते दीखने लगते हैं
—वे
जो टूट जायेंगे

लेकिन जब तक
हवा में तैरेंगे
इन्द्रधनुषों की एक कड़ी
हर मायूस चेहरे पर
किलकारी की तरह
छोड़ जायेंगे !

ज़रूरत क्या है ?

मैं जानता हूँ
तुम्हारी डोर खत्म हो चुकी है
और गड़ारी की गर्दन में अब वह
फाँसी की तरह झूल रही है !

जिस स्फटिक जल को
तुम खींचकर बाहर कर लेना चाहते थे
वह अब भी रिसता हुआ
अँधेरे में लटकती
रस्सी के
निरुपाय छोर को देखता है

अब कोई चमत्कार नहीं होगा
तुम्हारे हाथों की रस्सी बढ़ नहीं सकती
क्योंकि इस जगत पर तुम अकेले हो
और अपनी पकड़ को मुट्ठियों से
छोड़ नहीं सकते--
और सदियों से अँधेरे में ताकता पानी
भीतर ही भीतर कुलबुला कर
रोशनी तक उठ नहीं सकता !

ढील देती हुई गड़ारियाँ
खर खर···खर···खर···खर···
अँधेरे के पार शीतलता।
लेकिन
डोर हर बार कालिख छू कर
लौट जाती है !

तुम भी चाहो तो
इस डोर को खींच लो
और किसी ऐसे पोखर की तलाश करो
जो सतहों पर छलछलाता रहता है
और हर किसी को
वह वापस कर देता है
जो बह बह कर
उस तक
आता रहा है—
भागती हुई याता के साक्षी
ये पोखर
किसी को असमर्थ नहीं छोड़ते
कहीं कुछ नहीं जोड़ते !

जोड़ना क्या ज़रूरी है
उस अंधे पानी
और फाँसी की तरह लटकी
अधूरी डोर का ?

छोटा-सा संकल्प
एक धँसती हुई याता पर छोड़ देता है
सिर्फ़ खर खर···खर खर···खर···खर···
और रहस्यभरे हिचकोलों को
निरर्थक झाँकती हुई टकटकी !..

आग के कुछ टुकड़े

पहला टुकड़ा

●

एक ठंडा कर्पूर खण्ड
दिन की सिलवटों के बीच
क्षयी महायात्रा में क्रमशः
दफ़न होने का देता आभास।

आतशी शीशे में तैरता
वह कौन-सा अदृश्य बिंदु
जिसने तहों में कैद
शीतलता को
सिर्फ़ दहकने का संस्पर्श दिया ?

दूसरा टुकड़ा

●

वीणा से
झरता हुआ महारास
आरोहों में टँके दीपित नक्षत्र
अवरोहों में चिटखती दबी चिन्गारियाँ
नाचती उँगलियों में बँधे जलते सूर्य;

जलन की जो लहर
तिरोहित हुई सी लगती है
रगड़ खाकर फिर उसी खोई हुई लय में
बँध जाती है।

तीसरा टुकड़ा

●

बाँस के पेड़ों से गुज़रती हुई लू
मेरी तटस्थता को
हर क्षण ललकारती हुई
हज़ारों रंध्रों से
कथाएँ गुनगुनाती है ।
डरी हुई चीखें
झुलसन को
दवा के पोस्टरों की तरह
सार्वजनिक दीवारों पर छोड़ जातीं हैं !

चौथा टुकड़ा

●

अतृप्ति
बह रही है
गंधक के इस चश्मे में
जिसमें
सुदामा की पोटलियों के बचे हुए तंदु
गलगल कर
अपनी अर्थवत्ता
खोज रहे हैं ।

●

वर्दियाँ कसे
और रबड़ के फौव्वारे हाथों में लिए
दिन आए
और एक सीलन देकर चले गए।
अखबार के ठंडे छापे में
पड़कर भी
बौछार को झेलती हुई
आग
वह बोध क्यों नहीं बन पाती
जो चाय की मेज़ पर
पहिली और अंतिम बार
साक्षात्कार कराती है ?

●

द्युलोक का रास्ता

महिमा मंडित पताकाओं से
सन्नाटे को आकृतियाँ देते
अपने अपने रथ की वल्गाओं को खींचते
आते हैं
दर्शन
धर्म
आस्था
कर्म
समर्पण
विद्रोह
और चुपचाप इस अभेद्य दीवार के पास
हतप्रभ
असहाय
खड़े हो जाते हैं !

वे जो रथों के पीछे
जय जयकार करते चले आ रहे
अब केवल अपनी पंक्ति में खड़े खड़े
पैरों को ऊपर नीचे चला कर
चले हुए को याद रखना चाहते हैं !

अंतिमता—
जो अंगीकृत नहीं करती
अपने बोध को
दुर्लंघ्यता में
स्वीकृति देती है !

सजी हुई चौकियों का जलूस
आदिम झरने की धार में नहाकर
दीवार के पत्थरपन को गहराता जाता है...

वह जो उनके कंधों पर था—
जिसे लेकर वे होड़ करते दौड़ते थे
वह जो डगों की हरकतों को
उपलब्धियों का नाम धरता था—
अब
केवल नहीं होने में—
होता है।

अमनस्—
वह जो उगता है
उस पत्थर को चीरकर
वपुर्धमिता को चुनौतियाँ देता
अनुपस्थितियों पर दस्तक देता है।

निर्मलता पर जो कुछ दीख जाता है
वह सिर्फ़ स्वयंभू अक्स है
जो बने बनाए उत्स से
फिक कर चले आए हैं
रोशनी के छोटे-छोटे छल्ले
शीशे पर

अक्सर एक बुनावट डालते हैं
और फिर एक दूसरे में
तिरोहित हो जाते हैं!

चिराग़ की उजली परछाइयाँ
जो टाँकने के पहिले ही
नहींपन में घुल जातीं हैं
मृत्य का सार्वजनिक घोष नहीं करतीं
दफ़न और दाह की यात्राएँ
उन्हें मुहरबंद नहीं करतीं

आँखों का मातम
उनको याद नहीं करता !
लेकिन वे परछाइयाँ
पथरीली दीवार में
सूराख करने के लिए
काँपती रहतीं हैं—

शायद एक और वैचित्र्य
निरर्थकता को अंगीकृत कर ले
प्रकाश की सुरंगों से
स्तब्धरथों को
द्युलोक का रास्ता
मिल जाए--

विकृति

बलखाए दर्पण के पार
परिचित विकृति झाँकती है।

बहेलिए के
फेंके छलावे में

गौरइया
– अब भी फड़फड़ाती है!...

प्रतीक्षा : एक और

रेल की पटरी के पास
खड़ा बच्चा
निकलने वाली ट्रेन को
अपनी ही उपलब्धि मान लेता है !
हर प्रतीक्षा
मुझे उसके पास खींच ले जाती है !

बिना इन पंखों के

तुम
जब जब अपना राग अलापते हो
मेरे ऊपर से
एक गुनगुनाता हुआ सैलाब
निकल जाता है !

मैं तुम्हारी बातों पर
हाँ या ना नहीं कह पाता
क्योंकि मैं—
मैं होता ही नहीं !
मैं तुमसे मना भी नहीं कर पाता
कि इस तराने को मत छेड़ो
जो आकाशगंगा पर
पैरों की छाप खोजने
मुझे बेबस भटकाता है !
मेरी पुतलियों में बनती हुई आकृतियाँ
तुमको खींचतीं हैं। पर चाह कर भी
अपने साथ
ले नहीं जा सकता तुम्हें
बिना इन पंखों के—
जो—
जौ जौ उगते हैं

जैसे—

तिल तिल घटता हूँ मैं !

अभिशप्त लोक का बेगानापन
तुमको निगल जाएगा—

कुतूहल के आकर्षणों में
बेसहारा उड़ना
और फिर किसी दुर्गम चट्टान पर
हताश गिरकर
दया के लिए हाथ पसारना :

ओ मेरे पंखहीन दोस्त !
तुम जानते हो
कि बिना माँगे

तुम हमेशा ही अधूरे रहोगे !

अपनी इस मोहभरी यात्रना का
बारंबार
तुम
देने की संज्ञा से अभिषेक करते हो !

लेकिन फिर भी
वे पंख
क्यों नहीं उगते ?...

पानी की तलाश

तुमने भी
उसको
चट्टान की संधि में
पानी की तलाश
करते देखा होगा
जो सहूलियत की सुरंगों में
बार बार एक नया पत्थर
चुन देता है
और सुलझे चौकीदार से
पहाड़ी नाले के रास्ते का
बयान सुनता है।

तुमने भी
उसको देखा होगा
जो झूठे पड़ते रास्तों के
सड़े पत्तों पर
अपनी दाब छोड़ता
जपा हुआ शब्द-सत्य
अपनी चौकड़ियों को
सौंप देता है !

●

स्वर के तल में

उसकी हर ड्योढ़ी बंद !
वाणी : नहीं ।
दृष्टि : नहीं ।
गंध : नहीं ।
पवन-जँगलों से तैर कर
नए इंद्रजाल बुनता था ।
निचाटे में
अब वह
मूर्छना सा
मूर्त होता है
और इंगित के पहिले
स्वर के तल में
पैठ जाता है ! ...

बारिश . तीन चित्र

एक

●

पत्ते भीगे हुए हैं
कटीली झाड़ियों पर बूंदें
        चू पड़ने को आतुर हैं
डगर पर रपटन आ गई है
परनालों से धार अब भी गिर रही है—
नमी है। बाहर और भीतर भी।
गुपचुप।
शायद बारिश आई थी।...

दो

●

चिलचिलाते हुए दर्द की तरह
एक बेमौसम धूप—
दौड़ती हुई लम्बी चुप्पी की तरह
        काली सड़क
परिचित छाया को अस्वीकारती हुई गति
यह कैसा लहरा आता है
जो भीतर ही भीतर
        भिगो कर
        निकल जाता है ?...

तीन

●

असमंजस की तरह
पूरी शाम
जो घिरता रहा
अब धीरे धीरे
बरस रहा है !

आकाश को इतना लबालब
करने के बाद
उसके छलकने का उलाहना—
उस नाम को पुकारना है
जो अँधेरे पर
रोशनी के मनचाहे
ठप्पे मारता रहता है !...

●

मुक्तिताप

एक

●

चुप हुई धवला ठंड
गुफ़ाओं की यष्टि छोड़
संकुल मेले पर
उतर रही है :
कहाँ है वह ताप
जो इसे गंगा कर देता है ?

दो

●

अंधी गुफ़ा में
काल की उरेही
हिमशिला
ग्रीवा
कटि
चरण—
गुहारंध्रों में नाचता
बर्फ़ के फाहों भरा पवन
सिर्फ़ साँ…साँय…साँय…साँय
पसीजती
छरहरी धार—
तीर्थधाम :
मेले, पताकाएँ, पुण्यलाभ, मोक्ष !…

●

नदी और मेघ

नदी की सार्वजनिकता
बूँद में सिमट आने को
छटपटाती
प्यास बन जाती है !

भटकता हुआ मेघ
पठारों पर
झरना हो जाता है ।...

मंत्रसिद्ध पाषाण

तपती हुई चमकीली गर्म बालुका राशि के
क्रोड़ में
सिर छिपाने
लौट आने वाले बिन्दु पर
प्रखर युवामार्तण्ड
लपटों के वातायन खोलता है

बेबादल दौड़ती हुई एक बौछार
पीछा करती है
रोशनदानों से चुपचाप उतर
लोहे की तहों में बंद रत्नों को
वह एक क्षण में निकालकर पटकती है
और बेलौस उड़ जाती है !
आहतता से मुक्ति की कामना
भागती हुई बौछार पर
जवाहिरात फेंकती है !

किंतु
वे मंत्रसिद्ध पाषाण खण्ड
फिर उसी तिजोरी पर
मँडराते हैं
और दोबारा
परखे जाने की यंत्रणा को
स्वीकृति दे
कैद हो जाते हैं !...

●

आग किसने जगाई ?

अपने सिद्ध भस्म के बीचोबीच
तुमने अपने भाल पर
गर्वीली उपलब्धि सा
धारण किया है
यह जो कर्ज़ का अतिरिक्त नेत्र—
सदाशिव !
—क्या तुम्हें स्मरण है कि
किसी पुण्डरीकाक्ष ने
समर्पण का यज्ञ पूरा करने के लिए
पुतलियों में तुम्हारी परिकल्पना
सहज ही तुम्हें सौंपी थी ?
—किन अग्नि बीजों से निर्मित हुआ था
वह कमल
जिसका पटल खुलते ही
वे
जो सिर्फ़ तुमको जगाने के लिए आते हैं
फूलों का भस्म बन जाते हैं !
समर्पित आँख में आग किसने जगाई—
त्र्यंबक ! तुमने ?
या विष्णु ने ?...

झुकी हुई रोशनी

और फिर...
वह मणि निकाल लाने को
उस रहस्यमयी अंधी गुफ़ा में
भीतर जाने की विवशता घेरती है :

लाल नीलम पन्ना और पुखराज
अपनी आँक को खोजते
अँधेरे से चिपटे पड़े हैं;
रत्नों को लुढ़काती
आपस में टकराती
अज़दहों की चिकनी लम्बी पूँछें
मकड़ी के जालों को
हवा में तोड़ती हैं—
खनक और फुफकार
पास आते पैरों में चाँदी की
जंजीरें बाँधती हैं !

चीखती हुई रोशनी
चट्टानों को छूकर
शीशे सी आँखों में धँस जाती है—

कुंडलाकार मणिधरों के छत्र
चुनौतियों में उठते हैं—

नहीं—
इस बार नहीं

यह रोशनी और पदचाप
पहिले भी इस गुफ़ा में
मणियाँ बीनने को आई—

फुफकारें अँधेरे को बार बार डँसकर
स्याह-संकल्प पर सीमेंट लगाती है...
नहीं—
अब पुनरावृत्ति नहीं !

अंधे
मोहे हुए अज़दहे
हर स्पर्श पर चोट करते हैं...

दबे पाँव सरकती
सीमित रोशनी के छल्लों में
बिखरे हुए रत्नकणों को
बटोरती हुई हथेलियाँ
सीत्कारों को भेदती
एकबार फिर बाहर आ जातीं हैं !

फैली हुई धूप
हथेलियों से झरती हुई रत्नराशि में
अपना मणि ढूँढती है—
पीली पड़ती हुई शाम में
गुलाबीपन लाने को
फिर उसी संकरी अंधीगुफ़ा में
प्रकाश
झुकता
है।...

●

मरे घरों पर बिगुल

हारी हुई बिसात अब भी बिछी है
कालिख और सफ़ेदियों में मरे घर । अनुक्रम ।
बाहर—
पिटे हुए मोहरे परस्पर अभिनय पर
रस्मी बधाइयों के हाथ जोड़ते हैं
कोने की मात
माथे किरीट सी थोपते हैं ।
मोर्चे से टूटी पल्टन का सजता हुआ खेल
टेढ़े होठों में मुस्कुराहट उगने से पहिले ही
डुबो देता है !

पराजय बिगुल बजाती हुई आती है :
प्यादे फर्ज़ी बनते हैं
पुरोधा
अपने ही पथ पर चलने का
स्वाहा पढ़ता है—
अर्जित फर्ज़ी प्यादे की मौत मरते हैं
बिसात से उतरते हैं !
मरे घरों पर बिगुल बजता है !

रात।
चालें चुकी होतीं हैं
अर्जित फर्ज़ी डिब्बे में जागता है
स्वाहा में उठती आँधी को
झेलने की छोटी सी अकेली कथा
दुहराता—
बाँकपन की वर्जना में
सो नहीं पाता है !

अंधे और रोशन चौखटे
भागते हुए कैमरे में
सड़क की तरह दौड़ रहे हैं
आगे...
और आगे...और...

अनामा गोपिका की कथा

एक

●

अपने भुजपाश में
बाँध कर रखने की असाहसी
वह अनामा गोपिका
अंततः राधा के समर्पण की कथा बनी !

—किंतु मुखारित एकांत में
गोधूलि के तिलक
और कालिंदी के रसमय सीमंत
अंक में समर्पित
वह सृजन शक्ति
अपने ही दाँतों से
काटी हुई जीभ की वेदना से
छटपटाते हैं !

मेले में बजती हुई बाँसुरी सी
नामहीनता
अंगीकृत होती रहती है !

दो

●

एक असंतुलन
और वृत्तों की बारबार
पुनरावृत्ति—

मथुरा नगरी को फ़िर फिर जन्माती है
अपने निर्वासन से आँजी हुई यातन
अब क्यों एक अजनबी से मिलाती है

वह

जो स्थितियाँ बनाता है
समाधान में क्यों खो जाता है ?..

●

लीला होड़ और अर्थहीन संदर्भ

आतुर कंधों पर चढ़कर दौड़ने वाली
पालकियों की परिकल्पना
मेरी ही पुतलियों में नाची थी
जब तुम्हारी जड़ता को लय देकर
मैंने इस लीला को जन्म दिया था ।

ये छोटी छोटी जय यात्राओं की पालकियाँ
मुझे खिड़कियों पर खींच ले जाती हैं :
इन को सजा कर
मैंने उस लहर को एकबार छू लिया था
जो चंद्रमा के लिए
ज्वार सी गाती हुई उठती है
और बूँदों में बिखर जाती है
शेष को मैंने
आरोपित वनवास की तरह
झेल लिया !

पहिले ही से सब कुछ जानकर
जिन्होंने दार्शनिक मुकुटों को
अपने शीश पर धारण किया
वे शोभायात्राएँ निकल जाने पर
उसकी निरर्थकता घोषित करते रहे

अनुराग और ईर्ष्या में तप कर निखरे नहीं--
केवल समाधियों में थम गए !
---और हर पालकी
शोभा यात्रा पर निकल कर
एक वातायन बनाती रही
जिसमें अनेक लोक तैरते हुए आते हैं
और सृष्टि के साथ-साथ
दफ़न होते रहते है !

वे आदिम कथाएँ
अर्जित यातनाओं की भोर में
नित्यरास से बिछुड़ी हुई गोपियों की तरह
द्वार द्वार
साँकल बजाती भटकती हैं-

मैं इन्हें
अपनी उस लीला से संदर्भयुक्त करूँगा।
जो होड़ की वीथियों मे
निस्संग होकर
अर्थवत्ता
केवल लय के समर्पण में पाती है !

दुख

निराधार आस्था के साथ
हमबिस्तर हो कर
एक संयोग में
दोनों ही अपने अपने
बच्चों को
जन्म देते हैं।

एक :
खंडित, विकलांग, अंधा
—किंतु जीवित;

दूसरा :
सम्पूर्ण, सौंदर्यनिष्ठित, दिव्य
—किंतु पहली ही साँस में मृत !

दुख:
—विकलांग के लिए ?
मृत के लिए ?

●

वह जो शब्द नहीं है

जब भी बहाना मिलता है
मैं
चुप की खिड़की
खोलकर
भीतर झाँकता हूँ
जहाँ ललछौंही आग की तरह
सिर्फ़
एक चकाचौंध हैं

क्योंकि तुम्हारा होना
और न होना
सिर्फ़ शब्द नहीं है
इसीलिए अक्सर
अपने और तुम्हारे बीच
मैं यह खिड़की खोल देता हूँ
ताकि वह जो शब्द नहीं है
यह चकाचौंध
झेल सके !

चुप की धूप

आवाज़
किसी छाँह में दुबक गई है
जो रक्तचाप को त्वचा की तरह
आबद्ध करती है।

तरङ्ग शब्द नहीं बनतीं
घंटियाँ
मुट्ठी की पकड़ में आकर भी
ईथर में टकराती हैं।

धूप
जब सही नहीं जाती
घुमड़ते हुए शब्द
आते हैं
और भिगोने के पहिले ही उड़ जाते हैं।
सन्नाटे में फेंकी हुई आवाज़
प्रतिध्वनियों के दरवाज़े बंदकर
रेतीले विस्तार पर पाँव धरती है—

अंधड़ों में भटकते हुए
खोए हुए शब्दों से कभी साक्षात्कार
दोपहर को
निरंतर बजाता रहता है !

●

शंख द्वीप

एक शङ्ख द्वीप में
अज्ञातवास
अपने ही रेशमी तागे में लिपटा है।
निजत्व से काटा हुआ अलगाव
भीतर ही भीतर रेंगता है :

उस इकाई में पिरोया हुआ
जहाँ हवा में समर्पित हो जाने के लिए
पंख फैलाना नहीं पड़ता !
अनिवार्यता की परिणिति का दंड
फासलों में
अभिशप्त फल की तरह
उमस में पकता रहता है।

बंद डाकघर

इतनी सीढ़ियाँ चढ़कर
आने पर लग रहा है
कि मैं
एक सपाट चुप को
सौंप दिया गया हूँ :

अक्सर
इस लेटर बक्स के पास
अपने हाथों
खूबसूरती से पते लिखे
लिफ़ाफ़े
लेकर आता रहा हूँ
उस बचपन की तरह
जो तुम्हारा पता
सिर्फ़ तुम्हारे नाम के रूप में
जानता था !

मीलों लम्बे इस वीरान में
ये लिफ़ाफ़े
मेरे हाथों से
अब यहाँ कोई नहीं थामेगा--

क्योंकि उसे न तो

तुम्हारे नाम की साख रखनी है

और न

मेरे विश्वास को पक्का करना है !

सीढ़ियों की शर्त से बँधी

अनन्यता—

निर्वासन में भी

बंद डाकघर को

सम्बोधित करती है !

●

हम दोनों के बीच

जब से यह इमारत बन रही थी
और इसमें तमाम खूबसूरत
झरोखे
खिड़कियाँ
और दरवाज़े
खुलते जा रहे थे
तब मैं जानता था
कि इनसे
रोशनी नहीं
हवा नहीं—

वह तीसरा
हम दोनों के बीच
ज़रूर आ जाएगा !

जब भी हम अपने को
घटाने की कोशिश करगे
या जब भी बहुत-सी शामें
एक बारिश के रंग में घुलने लगेंगी…

और फिर किसी शरारती साँवले बच्चे के होंठो से
लगी हुई तरबूज़ की फाँक की तरह के बादल
नज़रें बचाने के लिए
पेड़ों के झुरमुट के पीछे छिपने लगेगें

और जब हम दोनों इमारत से निकल कर
सँकरी पगडंडियों से
उसे पकड़ने के लिए भागने लगेंगे
तो यह तीसरा
ज़रूर पीछा करेगा !

फागुन की निर्हेतुमान-सुबहों को
हमने जब गुलाल की तरह
आसमान में
अपनी मुट्ठियों से फेंक दिया था
और अमलतास के फूलों की तरह
बातें
जब सड़क पर बिखर रही थीं---
मैं नहीं जानता
तब भी ऐसे मौसम में
वह तीसरा
हवा में तैरता
कैसे घुस आया था ?

ज्यों ही आँखों से
खुशबू उड़ी
वह सूँघता हुआ आ जाता है
हमारी निगाहें
उसके हाथ के पींजड़े पर
ठहर जातीं हैं
जिसमें वह एक अजनबीपन लाता है
और इस इमारत में
कबूतरों की तरह
फड़फड़ाने को छोड़ जाता है !

जब भी गुलमुहर फूलने लगते हैं
और सूरज ऐंठ कर चलता है—
कटी हुई खिड़कियों को
ऊबी हवाएँ खटखटातीं हैं
तुम्हारे आने का वक्त होता हैं—

लेकिन
मैं जानता हूँ
यह सिर्फ़ लू है
जो मेरे दरवाज़े खड़काती है !

●

यात्रा : आँखों के साथ साथ

कसे हुए सितार की तरह
मैं बज रहा हूँ—
आँखें : मिजराब हैं !

वृंदावन में अनन्यपूर्वा
रास रचाती है
आँखें : बाँसुरी हैं !

प्रार्थना की अनुगूँज
अब भी आ रही है
आँखें : शंख हैं !

शामें : तीन रंग की

पहिला रंग

●

पीली धूप
दीवारों में कैद होकर
साँवली पड़ गई !

रहस्य लेते हुए रोशनदान
हतप्रभ हो चले :
दिन में माँगा हुआ
अतिरिक्त प्रकाश
अपनी सार्थकता की दुहाई देने लगा !

राहों पर ताले पड़ गए
कमाई हुई जीविका की धूल
अब उड़ रही है
सन्नाटा
पुकारे जाने की प्रतीक्षा करता है :
घंटियाँ बजतीं हैं
और अँधेरे तिलस्मों के दरवाज़े
धीरे धीरे खुलते हैं—

शाहज़ादा जलतरंग बजाती हुई सीढ़ियों से
नीचे उतरता है
खिलखिलाते झरने
गुपचुप छोटी-छोटी बातों सी
बिछी घास की मख़मली कालीन
रूठकर भागती हुई पगडंडियाँ
हवा के चौमुख झोंके झेलती
आड़ छोड़े खड़ी
बरादरी
संवेगों पर नाचते फ़ौव्वारे
और सुनहरी परियों की एक उदास शोभा यात्रा !
फिर एक स्तब्धता में
टेलिफ़ोन की घंटियों की तरह
ओझल परियों के घुँघरू
एक साथ तेज़ होकर बज उठते हैं !

कुछ नहीं की छायाओं
से बना अँधेरा
सड़क पर प्रश्नचिन्ह की तरह पड़ा
दौड़ते हुए पहियों में
लिपटने की कोशिश करता है !

दूसरा रंग

●

किलकारियों से भरा
हरा मदान

नारंगी आसमान में
सिलहुटी छाया डालते
यूकुलिप्टस…

बादलों में संशय सी आकृतियाँ
रोशनी की प्रतीक्षा में खड़े खंभे—
सब कुछ सीखचों में बंद है !

समर्पित पंक्तियाँ एक एक कर
ठाकुर की आरती उतारती हैं

बाहों में शाम
भर जाती है !

आईना
गवाही देने से कतराता है
गहराई में धँसती हुई रोशनी
सिर्फ़ एक सतही छवि फेंकती है
और सीढ़ियों से उतर जाती है !

तीसरा रंग

●

आवाज़
डाकघरों से तिरछी तिरछी आती है
नज़र
दीवार पर टिक कर चैन पाती है

साँस पर

टँके हुए

—ऊन के गोले

—और टी० एस० इलियट

—और आयोनेस्को

उस अँधेरे को काट नहीं पाते

जो अपनी ही देह को

अब पहिचानने नहीं देता !

आज मैं तुझे चुप नहीं करूँगा !

रो, मेरे बच्चे !
आज मैं तुझे चुप नहीं करूँगा।
इस मरण पर्व में
जिस दीप्ति-शिखा पर
तू सिर धुन रहा है--
एक चुटकी राख है··· !

रो, मेरे बच्चे
आज मैं तुझे चुप नहीं करूँगा—
अलगावों को जोड़ता हुआ नाता
और उन बेहद घने जमे हुए क्षणों के पुंज पर
रोशनी की फाँक से उदित; तुम। अकस्मात्।
ओ मेरे बच्चे !
तुझे वह मैं दे नहीं पाया
जो तू कोख से लाया।
ओ जने हुए दर्द
तेरे हाथ अब फैलकर कड़ी धरती छूते हैं
और नीलेपन पर तैरते हुए चाँद में
तू अपनी कहानियाँ टाँकना सीख गया है
इसलिए मैं
जो तेरा पिता हूँ
आज इस मरणपर्व पर
तुझे चीखने से रोक नहीं सकता--

रो, रो मेरे बच्चे
आज मैं तुझे चुप नहीं करूँगा !

——क्योंकि
मैं
शाम ढले
तेरी कसी हुई वर्दियाँ उतार
सिरहाने बाँह के सहारे
तेरी नींद
थपकियों से नहीं बुला पाऊँगा
——क्योंकि
मैं
तुझे अपने साथ
उन परियों के बीच
घुमाने नहीं ले जाऊँगा
जहाँ यह
धुएँ की कड़ुवाहट भरा मटमैला मुहल्ला
पीछे छूट जाता था
और तुझे लगता था
कि हर सुंदरता अपने में सुंदर होती है
आस्थाएँ वृक्षों की तरह फूलती फलती हैं
और ग़ल्तियों को जोड़ने के लिए
अनगिनती हरी नीली और गुलाबी परियाँ
अपने सुनहरे पंखों में बहुत सारा मरहम लि
आस पास मँडराती रहतीं हैं !

तेरे सेब जैसे गालों पर
गलती हुई मोमबत्ती
उसका अंत घोषित करती है
जो सहज साधारणता को
भरम की ज़री में बुनकर
किसी निजी सत्य को

मूर्त करने का
संकल्प किया करता था !

रो, मेरे बच्चे
आज मैं तुझे चुप नहीं करूँगा···
हर संकल्प जब इस घड़ी से टकराता है
तो ढँके हुए हिरण्यपात्र का मुख
अकस्मात खुल जाता है--

चुकती हुई मोमबत्ती के मद्धिम प्रकाश में
तुझे लगेगा कि
हर सुबह तू अपने आप
अब एक स्कूल में पहुँच जाता है
जहां एक एक साँस
नई छाप छोड़ रही है--
भूख जो तेरी है···अपनी है
उसके लिए तू अपने डिब्बे जुटा रहा है,
गल्तियाँ तेरी
अपने ही आईनों में अक्स होती हैं
और चेहरों की तरह खिल जाती हैं !
हारा हुआ खेल
सिर्फ़ एक नई शुरुवात दिखता है--
और तुझे
अपनी इन कसी हुई वर्दियों के भीतर
एक नन्हा सा दिल मिलता है
जो बिना बताए
बहुत कुछ वह टाँकता चला जाता है
जिसका अर्थ ढूँढते ढूँढते
पूरी ज़िंदगी सुगंध की तरह उड़ जाती है--

रास्ते--जहां कल्पवृक्ष नहीं होते
होना--और फूल की तरह झर जाना
सिर्फ़ इतना ही उन परियों को बता जाना

जो नींद ढूँढते बेचैन बच्चों को
एक नई कथा सुनाने के लिए
सारी सारी रात जागती हैं !

सूजी हुई पलकों में
नरगिस अब सिर्फ़ आधी दीखती है
चीज़ों पर एक फीकापन फैलता जात
और एक टूटती हुई आधी आवाज़—
—कुंडी चढ़ा कर बंद करती हुई
तू अब भी रो रहा है !

ओ मेरे अंश !
सर्द पड़ी कोख में दफ़न
हाथों से छीने गए खिलौने के लिए
चीख़ता हुआ तेरा यह बचपन
तुझे मुबारक हो !
दुःख की नई सीढ़ियों पर चढ़ते हुए पाँवों का
स्वागत मैं करूँगा...
क्योंकि
मैं मेरा पिता हूँ
कारण हूँ !
रो, रो मेरे बच्चे
आज मैं तुझे चुप नहीं करूँगा !

रास्ते का टुकड़ा

मेरे पास न तो
तोरणदार शिखरों का
संकुल आभिजात्य है
और न वह इतिहास
जो रथ की पताकाओं से
निर्मित होता है।

लेकिन
अक्सर मैंने सुना था कि
वनों की टेढ़ी मेढ़ी पगडंडियों के बीच से भी
तुम
अपने निर्वासन में
चुपचाप गुज़र जाते हो
बेहद व्यस्त रोज़नामचे में
नामों को पुकारते हुए !

उस अकस्मात् की तैयारी में
सारी उम्र यूँ ही
रास्ते के इस टुकड़े को
पोंछ पोंछ कर चमकदार करता रहा
जिस पर तुम्हारी परछाइयाँ
अग्निशिखा सी डोलतीं रहे--

शायद मैं तुम्हें रोककर
न तो बैठाऊँगा
और न उस खटमिट्ठे स्वाद से
परिचित कराऊँगा
जो तुम्हारे नाम पर
सारे मौसम
मैं बीनता रहा हूँ !

कहाँ है मेरे पास
मुस्कानों की वर्क़ में लपेटी
पानीदार पुश्तैनी तश्तरी
जो तुम्हारी नवधा फ़ेहरिस्त
साँचों में बैठ जाय--
वह जो तुम्हें निर्वासित कर
धारण नहीं कर पाते
जर्जर देहमें ;

वह जो अहर्निशनशे की तर
तुम्हारे सानिध्य को
पुतलियों में अंगारों की त
रखते हैं;
वह जो तुम्हारे अकेलेपन को
जययात्रा बनाने को
साथ-साथ खिंच आए;
वह जो आर्तमलयगंध सी
खींचती रही तु
अपने पास ?

इतिहास के इतने बड़े रास्ते से
कटे हुए जंगल में
मेरी परिधि के इस छोटे से टुकड़े के अतिरिक्त
कुछ नहीं है
जिसे मैं पोंछ-पोंछ कर
सिर्फ़ चिकना करता रहा हूँ--

ये सारे इकट्ठा हुए
खटमिट्ठे स्वाद
जैसे जैसे पुराने पड़ते गए
मुझे उस पुरानेपन की आदत पड़ गई
और लगता है कि
ताज़ापन अब सिर्फ़ तुम्हारे इंतिजार में ही
मीठा रह सकता है !

मेरी नासमझी को
समझने में
शायद ओढ़ी हुई वनभूषा के नीचे
तुम्हारा दबा हुआ
तोरणदार शिखरों का आभिजात्य आड़े आए
और उस मौसम को नकारे
जो हम दोनों के ऊपर से
एक साथ गुज़रता रहा है।

डायरी के छोटे छोटे पन्नों की तरह
मैं तुम्हारे लिए उस मौसम के सहदानी
चखचख कर जुटाता रहा हूँ
जिनकी स्वीकृति पर
बीतते समय के साथ
मैं ही
तमाम सवाल करता हूँ !

जानता हूँ
मैं उस सबकी
एवज़ी
नहीं बन सकता
जो सागर नापने के लिए
तुम्हें पुकार रहा है
अपनी ही प्रत्यंचा पर चढ़े

गिरिमालाओं और आरण्यकों
को लाँघते
अपनी महामहिमता को सूरज की तरह
फेंकना चाहते हो—

उसका यह कैसा अक्स
रास्ते के इतने छोटे से टुकड़े पर
चमक रहा है
जिस पर से तुम गुज़र जाओगे
पीछा करती
दो अथाह झीलों का
एहसास लिए हुए।

रोशनी की खराद

तुमने कभी यह महसूस नहीं किया
कि इन सँकरी गलियों को
मैं कितनी बार
अपनी आदत के ख़िलाफ़
नापता रहा हूँ
और बड़े फाटकवाले इस मंदिर के भीतर
आँखें चुराकर आता रहा हूँ
क्योंकि लोगों से सुना था :
यह इमारत वह तीर्थ है
जिसमें तुम वास करते हो—
तुम—
जो मेरे सुख के मालिक हो !

तुमने कभी यह महसूस नहीं किया
कि ये सारे शब्द
जो मेरे अनाहत स्वरों की अनुगूँजों से
जगमगाते
नई नई बंदिशों में
टाँगे जाते रहे हैं

बंदनवारों की तरह दरवाज़े पर
जिन्हें तुम उढ़काए रहे हो—
तुम—
जो मेरे सुख के मालिक हो !

तुमने कभी यह महसूस नहीं किया
कि कितनी बार पट खुले
और कितनी ही बार पटाक्षेप;
(जैसे यह खेल कभी नहीं होगा !)
अपने ही चेहरे पर रोग़न पोत कर
मैंने नई नई सूरतों में तुम्हारे सामने उतारा है।
पसंद करने की शुरुआत का कोई बिन्दु नहीं होता
शायद इसीलिए
जब पूरे मंच पर
अँधेरा हो जाता है
तो भी तुम
मुझे ही बचा हुआ क्यों देखते हो—
तुम—
जो मेरे सुख के मालिक हो !

तुमने कभी यह महसूस नहीं किया
कि मेरे पास था ही क्या
सिवाय एक उस पुरानी गठरी के
जिसमें तमाम चिंदियाँ
इकट्ठा कर रक्खीं थीं मैंने
अपनी याददाश्त की !

दरिद्रों से खींचकर ही
भेंट को मूल्यवत्ता मिलती रही है
इसीलिए पैरों को छूकर भी
अपने आप गठरी चढ़ा नहीं पाया
तुम्हें
जो मेरे सुख के मालिक हो !

सुखदा हंसी की एक तिरस्करिणी
दर्शन के निकटतम क्षणों में
रखवालों ने बीच में खींच दी है–
जो रोशनी के छल्लों को
काँपती हुई साँकल में
देख नहीं पा रहे थे––

तुम !
जो मेरे सुख के मालिक हो
फाटकों, बंदनवारों और पटों को लाँघते
एहसास से परे
रोशनी की यह कैसी खराद फेंकते हो
जो निषेध में ही उजागर होती
रेज़े रेज़े से
मिलावट निकाल रही है ?...

●

लीला का आस्वाद

ठाकुर !

तुम्हारी सम्पन्नता से
जब जब मेरा साक्षात्कार हुआ है
केवल मेरी अकिंचनता ही मुखर हुई है ।

दया का पात्र ही तो है
वह
जो दूसरे की सम्पदा पर घात लगाकर
अपने भिखमंगेपन को
सदा के लिए
मिटाना चाहता है !

नहीं आऊँगा—
मैं अब नहीं आऊंगा
इस मंदिर के दरवाज़े
जो मुझे सखा से सुदामा की सीढ़ी पर
ले जाकर खड़ा करता है !

सौगातें
—केवल स्वाद की वह कथा
कहतीं हैं
जो स्वीकृतियों के बावजूद

सारे नातों पर
करुणा का मरहम लगातीं रहीं–

वह कौन सा तर्क है
जिससे तुम्हारी हर बात सोलह आने
ठीक उतरती है
और मेरी हर प्रार्थना
एक दुराग्रह की स्थिति बन जाती है ?

क्या तुमने उस वज्र हिमखण्ड को देखा है
जो सोने की चकाचौंध झेलते हुए
अपना ममत्व
सपाट रोज़मर्रा जिंदगी पर उलीचता रहा है ?

उस रसमें डूबने के लिए
मैं तुम्हें निमंत्रित नहीं कर सकता—
क्योंकि तुमको सदा
किनारा ही पसंद आया है
जहाँ से समय आने पर
अपने को सुरक्षित निकाल सको !

अपनी ही क्षमता पर इतराते हुए
तुमने कब विश्वास किया
उस पर—
जो गहराइयों को चुनौती देने वाले
निश्शरण को
अपनी हथेलियों का स्पर्श
दे जाता है ?

इस ऊभचूभ में
चेतना खोकर जब जब
दुहराता रहा हूँ
कभी कभी वह मेरे बहुत निकट होता है :
उसे तुम दोस्त कहो या देवता
वह केवल डूब जाने की ही स्थिति है !

उबर सकता तो मैं भी
स्नेह और सम्मान की ये गठरियाँ लिए हुए
ज़रूर अपने घर लौट जाता——

लेकिन लीला का यह आस्वाद
अतल संदर्भों से
चुपके चुपके
मुझे न जाने कब का
बाँध चुका है।....

मुझ में पिरोए रह कर भी

क्या तुम यक़ीन करोगे
कि जब से तुम गए हो
मैं सिर्फ़ तुम्हारे ही बारे में सोचता रहा हूँ :

मेरे दुलार का चोट खाया हुआ चेहरा
और उनसे झाँकती हुई दो बेबस आँखें
वह सब स्वीकारने को उद्यत
जो उस पर समय ने लाद दिया है !

मेरे बच्चे !
तू अभी उन स्थितियों और मर्यादाओं को
नहीं पहिचानता
जो हर शुभ को लुंज बना कर
सिर्फ़ अपने सामर्थ्य का उद्‌घोष करने को
रह जाती हैं !

क्यों नहीं
तूने पलट कर
मुझे लौटा दिए मेरे शब्द
और उसकी रक्षा के लिए

क्यों नहीं चुनौती दी
जो हम दोनों के बीच
आकार ले रहा था ?

अपने तकियों में
मुँह छिपाता हुआ मैं
भटकते हुए उस ममत्व से
कैसे कैसे जोड़ रहा हूँ
जो खट जाएगा
लेकिन लौट कर नहीं आएगा !

मुझमें पिरोए हुए रहकर भी
तुम मुझसे नितांत अलग
अनासक्त-तटस्थ हो
यह तो मुझे उसी दिन पता था
जब मैंने तुम को प्राप्त करने के लिए
तुम्हारा नाम जपा था !

पर मुझे अब लगता है
कि तुम्हारी सत्य-तटस्थता
मेरे उस भरम के आगे
झूठी पड़ रही है
जो मैंने तुमसे बनाए रखने के लि
हाथ पसार माँगा था।

नहीं चाहिए मुझ
वह ज्ञान
जो मेरी सम्पूर्णता को
खंडित करता हुआ
तुम्हारे अलगाव की इकाई को
स्वीकृति देता है !

अंधतापस का विकलशाप
यातना को मुँह छिपाने के लिए
सिर्फ़ एक बहाना था
नहीं तो तुमसे अधिक और कौन जानता है
कि अपने मरण को वाणी मैंने ही दी—!

फिर भी—
मैं यह कैसे सोचता रहा
कि वह सब कुछ
अपने आप लौट आएगा
और मैं
विरजता के दूसरे स्तर
तुम्हारे साथ साथ छू सकूँगा ?...

●

प्रीति रस

सच है--
और कोई नहीं है
जिसे तुम दण्ड दे सको

छड़ियाँ जलतरंग बजातीं हैं
और मैं डबडबाई प्यालियों को
जब जब छलकने से बचाता हूँ
वह कौन है मेरे राग
जो बिना बजे हुए
मुझ तक तैरता चला आता है–
जिसे मैं खोखले शब्दों में
भरने की कोशिश करता हूँ ?

खोखले शब्द--
--असंभव की याचना करते
नादानियों और अटपटे व्यवहारों से
मेरे बचपने की वकालत करते हुए--
काठ के टुकड़ों की तरह
मैं उन्हें
नई नई तरतीबों में सजाता हूँ !

मेरे खेल की निरर्थकता समझकर भी
तुमने बढ़ावा दिया—
लेकिन मैंने कब कहा :
मैं परम सार्थक
लीलाधर
नामधारी
शब्दों का श्रेष्ठ कारीगर ?

कौन-सा रसायन था
जिसमें ये फ़ौलादी मुखौटे
अपने आप गल गए
और तुम मेरी आँखों में झाँकते हुए
बचपन को
साफ़ साफ़ देखने लगे !

मुद्दतों से सधे हुए
मेरे सहज बहुरूपीपन के
सहसा हटने से बेचैन
ओ मेरे नित्य-वृंदावन !
उस अकस्मात् के लिए
कौन तैयार रहता है
जो उघाड़ कर
गोद में मुँह छिपाने के लिए
एक दिन विवश कर देता है ?

[सरसठ

जब जब मेरे खोखले शब्दों को
बेधती हुई मेरी साँसें
रात भर बाँसुरी की तरह बजातीं रहीं हैं
मैंने तुम्हें ढूँढते
पुकारा है : नाम संकीर्तन में–
मुक्ति दो !
मुझे इस दण्ड की यातना से मुक्ति दो !

मेरे उस निजी अकेलेपन में
किसने कहा था :
'रमण करता हूँ उस अहेतु प्रीति में
जिससे मेरा अभिषेक अहर्निश करते रहे हो !'
सुनो ! उसी प्रीति में बसने वाले !
सुनो !
तुमसे जब जब कुछ ग़लत माँगा
तुमने मुझे दंडित किया बारंबार !
आज फिर मैं जब ग़लत प्रार्थना कर रहा हूँ
मुझे उसी तरह दंडित करो !

नहीं––
तुम्हें दुख करने का कोई कारण नहीं
पहिले भी मैंने देखा है
जब मेरी बचकानी ग़लतियों को
तुमने अपनी करुणा से धोकर
जुही के फूल की तरह
उजला और गंधमय कर लिया !

नहीं—

इस बार मुझे वह करुणा भी
मत दो !

यह जो तुमने मुझे फेंका है
उमड़ते हुए ज्वार में
जाने दो—
मुझे उसमें बह जाने दो !
ज्वार यह तुम्हारा है
इसे भी
आशीष की तरह
सिर माथे चढ़ाता हूँ !...

●

उज्ज्वल नील रस

क्या किया——?
मैंने ऐसा क्या किया
जो तुम्हारी आँखें
पहिचानने से इन्कार कर रहीं हैं ?

लुटी हुई सम्पदा के प्रति
उदासीन रिक्तता को
क्यों तुम
एश्वर्य की नई सृष्टि से भरते रहे ?

किसने कहा था तुम्हें
मुझे अनन्यता के विग्रह में बाँधव
व्यवस्था को कालियदह की तरह
मथ

और हर बार
बाँसुरी बजाते हुए उबर आना !

अच्छा ! तुम तो बड़े मर्मी हो राग के !
फिर बार बार
यही एक राग क्यों टेरते हो

जिससे छीना हुआ सुख
वापस लौटने लगता है

और मुझे इस नीले समुद्र में
एक छोटी-सी कागज़ की नाव पर
बिठा कर छोड़ देता है
जहां डूबना ही नियति:
राग में अंर्तभुक्त
वही नाम-वही नाम
...फिर वही नाम !

जो था अपूर्ण
लीलानुवर्तनों में
अब भी अपूर्ण है--
कैसा है तुम्हारा
यह उज्ज्वल नील रस
रीतेपन को जो पहिचानता
करता है पूर्णकाम !

●

स्वीकृति

फेरी हुई पीठ
और कतराई आँखों के
बीच
मैं ही हूँ
जो रिसते हुए जल की तरह
पैवस्त हो रहा हूँ !

साफ़ इन्कार के गर्भ से
परिमल सा
मैं ही
रूप धरता हूँ
कहीं और ठौर !

काठ में बँधे
यमलार्जुन को
मुक्ति देकर
संबंधों की तलाश में भटकते
ओ मेरे आत्मांश !
सिर्फ़–
और सिर्फ़ तुम्हीं को
मैं
स्वीकार करता हूँ !…